डेराडंगर आत्मकथा में चित्रित आदिवासी समस्याएँ

कु. प्राजक्ता अंकुश रेणुसे
शोधछात्रा
शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर
Email - prajurenuse30@gmail.com
Mob.no.- 8551829188

सारांश: -

डॉ. अर्जुन चव्हान के द्वारा मराठी की अनूदित आत्मकथा 'डेराडंगर' में दादासाहब मोरे के जीवन के अनुभवों को प्रस्तुत किया है। आत्मकथा का मूल नायक आत्मकथाकार होता है लेकिन प्रस्तुत आत्मकथा में लेखक को गौण स्थान दिया गया है और परिवेश को प्रथम स्थान दिया है। दादासाहब मोरे कुडमुडे जोशी (डुग्गी जोशी) समाज के लोग पिंगला नामक पंछी को लेकर सुबह-सुबह भीख माँगने के लिए हर एक के दरवाजे पर घुमते है। अपना पेट चलाने के लिए भीख माँगने के लिए मजबूर है। पिंगला पंछी को साधन बनाकर भीख माँगते है। पिंगला पंछी क्या बोलता है यह भी उन्हें मालूम नहीं होता लेकिन हर एक के दरवाजे पर खड़े होकर वे कहते लक्ष्मी आपके घर में वास करेगी, आपके घर में खुशियाँ आएगी मतलब किसी को बुरा नहीं कहना चाहिए अच्छी-अच्छी बातें अपने मन की बनाकर बताते हैं इस प्रकार भीख माँगकर अपनी रोजी-रोटी चलाते हैं और अपना जीवन व्यथित करते हैं।

बीज शब्द : - डेराडंगर, तिरपाल, कुडमुडे जोशी (डुग्गी जोशी)

हिंदी साहित्य के अस्मितावादी विमर्शो में आदिवासी लेखन सबसे नवीन एवं महत्वपूर्ण विषय बन गया है। कई वर्षों से जिन्हें हाशिए पर रखा गया था आज उन्हें साहित्य में स्थान मिल रहा है। उन्हें एक नई दिशा मिल रही हैं। आदिवासी याने कि ऐसे लोग जो जंगल में ही रहते है और अपनी रोजी-रोटी की तलाश में एक जगह से दूसरे जगह स्थलांतरित होते हैं। आदिवासी लेखक माया बोरसे आदिवासी समाज को अपने विचारों से स्पष्ट करती हुई कहती है "आदिवासी समाज ऐसा समाज है जिसके नाम में ही उसकी पहचाने छिपी हुई है। आदिवासी शब्द के लिए 'मूलनिवासी' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है अर्थात आदिवासी समाज इस भूमि का मूल निवासी है और वही इसभूमि का उत्तराधिकारी भी है।"[1] उन्होंने आदिवासी को मूलनिवासी कहा है।

मराठी के बहुचर्चित लेखक दादासाहब मोरे की मूल मराठी की आत्मकथा 'गबाल' को डॉ. अर्जुन चव्हान जी ने 'डेराडंगर' नाम से अनूदित करके राधाकृष्ण प्रकाशन से पहला संस्करण 2001 में प्रकाशित किया है। आत्मकथा में नायक को प्रमुख स्थान देकर आत्मकथा लिखी जाती है लेकिन प्रस्तुत आत्मकथा में आत्मकथाकार को गौण स्थान देकर परिवेश एवं समाज प्रधानतावादी है। आत्मकथा में नायक का जीवन दुः खी, पीड़ित, यातनामय और नरकीय जीवन जी रहे है ऐसा महसूस हो रहा है । इसमें न नायक के गुणों पर प्रकाश डाला हैं यह उनका प्रयोजन कतई नहीं हैं। डेराडंगर आत्मकथा के जरिए इस परिदृश्य से परिचित होते है जो विमुक्त घुमंतू की तरह अपनी रोजी- रोटी के लिए जंगलों में घुमते रहते हैं। भीख माँगकर दिन गुजारते है। जिनका खुद का कोई अस्तित्व ही नहीं ऐसे 'कुडमुडे जोशी' (डुग्गी जोशी) जाति के ये लोग है जिनका विवेचन विश्लेषण हम यहाँ पर करते होत : -

'डेराडंगर' आत्मकथा के लेखक दादासाहब मोरे का मूल गाँव मिरज तहसील के शहरनुमा गाँव में सलगरे बाज़ार में लेखक तिरपालों के समाज में वास्तव्य करते हैं। प्रस्तुत आत्मकथा के जरिए आदिवासी समाज का परिवेश, विमुक्त घुमंतू लोगों की जिंदगी की व्यथा और वेदना उनकी प्रश्न पीडित जिंदगी से हम ज्ञात होते है। अपने उदरनिर्वाह के लिए, भीख माँगकर ये रोजी रोटी की तलाश में रहते है। कुडमुडे जोशी (डुग्गी जोशी) समाज के लोग सुबह जल्दी उठकर डुग्गी बजाकर गाँवों-गाँव भीख माँगने के लिए घुमते है। वे लोग पिंगला नामक पंछी को लेकर घुमते हैं। वह पिंगला पंछी बोलता है वह यह लोग सभी को बताते है ऐसी धारणा समाज में बन गई है। वस्तु स्थिति तो यह रहती है कि पिंगला पछी किसी का भविष्य बताता ही नहीं यहाँ तक वो पंछी क्या बोलता है यह भी उन लोगों को पता नहीं इसका मूल कारण बस यही है कि सभी के दरवाजे पर जाओ अपका भला होने वाला है, आपके घर लक्ष्मी वास करनेवाली है आनेवाला वक्त आपकी जिंदगी बदल देनेवाली आनेवाली है ऐसी मीठी मीठी बातें बनाकर वे भीख माँगते है। मूलत: ये आदिवासी लोग है कौन? यह सवाल सामने आने के बाद गिलिन ने अपनी किताब 'कल्चरल एथ्रोपॉलॉजी' में आदिवासी के संदर्भ में कहा है "स्थानीय जनजातीय समूहों को ऐसा समवाय जनजाति कहा जाता है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है, एक सामान्य भाषा का प्रयोग करता है तथा जिसकी सामान्य संस्कृति है।"[2] स्पष्ट है कि जो सामान्य क्षेत्र का निवासी है वह सामान्य भाषा एवं संस्कृति का प्रयोग करता हो उसे ही आदिवासी कहा गया है।

यह लोग जंगल में ही वास्तव्य करते हैं इसका ओर एक उदाहरण प्रस्तुत आत्मकथा में दादासाहब मोरे ने अपने जीवन के अनुभव प्रस्तुत करते समय बताया है, "हमारी जाति का प्रत्येक व्यक्ति जंगल में ही जन्म लेता और जंगल में ही मरता था। हमारे लोगों ने कितने सारे प्रसंग खुली आँखों से देखे थे।"[3] उन्होंने कहा है कि हमारा जन्म और मृत्यू के बीच जो भी पूरी जिंदगी बीत जाती है वह जंगल में बितती है चाहे सुख या दुःख इसलिए वे कहते है मैंने कितने ऐसे प्रसंग खुली आँखों से ही देखे है और अनुभव भी किए है।

आदिवासी लोगों का वास्तव्य एक ही जगह स्थित नहीं है अपना पेट भरने के लिए रोटी की तलाश में हमेशा स्थलांतरण करते है परिणामत: इस समाज के बच्चों का शैक्षणिक नुकसान होता है। यह समाज पिछड़ा हुआ दिखाई देता है। इनके समाज में अज्ञान, अशिक्षा का बढ़ता प्रमाण सामने जा रहा है दादासाहब के पिता मलारी को सभी कहते है छोरा अभी बड़ा हुआ है उसे एक झोली दो और वो भीख माँगने जाएगा तो हमें एक वक्त रोटी तो आराम से मिलेगी।

मलारी अपना बेटा दादासाहब को आत्मनिर्भर बनाना चाहता है, इसलिए वो किसी की भी बातों की ओर ध्यान न देते हुए दादासाहब का पाठशाला में प्रवेश लेते है लेकिन उन्हें शिक्षा हासिल करते समय बहुत कठिनाईयों से गुजरना पड़ा है। इस समाज के लोग अपना डेराडंगर उठाकर गधे पर सामान डालकर स्थलांतरित करते है। एक जगह स्थित न होने के कारण दादासाहब मोरे को बार-बार पाठशाला बदलनी पडती है। तब भी मलारी को गाँव के लोग कहते "अरे मलारी sss तू पागल वागल हुआ कि क्या ? छोरे कु इस्कूल में भेजना हो तो किसी-न-किसी गाँव में रहना होगा … इस्कूल ऐसे जंगल में तेरे तिरपाल के साथ आता है क्या? इसतरह की बातें सुनकर मेरे पिताजी चुप बैठा करते।"[4] अपनी रोजी-रोटी जहाँ पर मिलना खत्म हो जाती तब ये लोग दूसरी जगह अपना डेराउंगर लेकर जाते है। इसलिए उनके समाज के सभी लोग उनके पिता मलारी को कहते है अपने बेटे दादासाहब को स्कूल में मत भेजो। लेकिन उनके पिता चुप नहीं बैठते सभी लोगों की ओर नजर अंदाज करते हुए वे दादासाहब का पाठशाला में प्रवेश लेते है। कुडमुडे जोशी (डुग्गी जोशी) समाज के थे आदिवासी लोग दो दिन कुंभारी में रहने के बाद तिसरे दिन तिरपाल जाने के लिए निकलते है वहाँ पर विमल प्रसुती हो जाती है यह भी उनके सामने एक बड़ा संकट था क्योंकि उस समय बारीश आयी होती है वहाँ से शेगाव जाने के लिए मचिन्द्र शिंदे और दो दिन जन्मे हुए बच्चे को आडे पकड़कर वे दोनों घोडे पर बैठकर आगे बढ़ते है यह दृश्य देखते हुए पासवाले बस्तियों के लोग कानाफुसी करते हुए कहते है इनकी जात ही भीखमंगे की बुरी है लेकिन उन्हें किन-किन संकटों से गुजरना पड़ता है वे खुद ही जानते है इसपर दादासाहब मोरे का भाष्य है "हमारा जीवन बहती हवा के समान बहने लगा। उदित होनेवाला हर दिन नए-नए संकट लेकर आता था। … और उसके अस्त के साथ उन संकटों का भी अस्त होता था। दिन के बाद दिन बीत रहे थे। जैसे एकाध सपना आए और जाग उठने पर वास्तविक परिस्थिति में आए, ठीक वैसे ही हम अपने घर बनाते और तोड़ते थे।"[5] प्रस्तुत कथन में उन्होंने अपनी जीवनशैली पर प्रकाश डाला है रोजी-रोटी की तलाश में भीख माँगते-माँगते अलग-अलग जगह अपना वास्तव्य करते है परिणामतः उन्हें संकटों का सामना करते हुए आगे बढ़ना पडता है। आदिवासी समाज के होने के कारण वे जंगलों में ही घुमते रहते है उन्हें कोई नौकरी भी नहीं देता है वे भीख माँगकर ही अपना जीवन व्यथित करते हैं, परिणामत: उन्हें आर्थिक विवंचना से गुजरना पड़ता है। दादासाहब मोरे का जन्म इस आदिवासी समुदायों में होने के कारण उन्हें कई समस्याओं से गुजरना पड़ा है। शिक्षा से कई लोग वंचित है। आर्थिक विवंचना के कारण पाठशाला शुरू होने के बाद भी जल्दी किताबे नहीं मिलती थी। "स्कूल को शुरू हुए एक महिना हुआ था। फिर भी मेरे पास पुस्तकें नहीं थी। नई पुस्तकें लेता परन्तु अठारह- महिना उन्नीस रूपए ही बचे थे। उसमें से कमरे का किराया देना था। बहियाँ लेनी थी। सिर्फ दो ही नई बहियाँ ली थी। सभी विषय उन दो बहियों में ही थे। इसलिए नई पुस्तकें ले नहीं सकता था। तम्मा ने गाँव में ही दिलिप जाधव की पुरानी पुस्तकें ली थी।"[6] आदिवासी होने के कारण वे लोग जंगल में ही घूमते फिरते है यह विमुक्त घुमंतू है इसलिए इन्हें कोई काम पर भी नहीं रखता है। दादासाहब मोरे के परिवार में लोगों को नौकरी न मिलने के कारण उनके परिवार में आर्थिक तंगी महसूस होती है वे अपना डेराडंगर बाँधकर गधे के पीठ पर डालकर अगले गाँव घुमते थे। इसतरह उनका जीवन विमुक्त घुमंतू जैसा है।

आदिवासी समाज के ये लोग भीख माँगकर अपनी रोजी-रोटी चलाते है। एक दिन वे भीख माँगने के लिए जाते है और उनके पीछे कुत्ते लग जाते है कुत्ते उन्हें काटते है उस वक्त का एक अनुभव उन्होंने बताया है "माँ ने रोते- रोते ही पूछा- क्या हुआ रे..? माँ sss कुत्ता काटने के लिए आया सो आबा ने पत्थर फेंका … वह पत्थर उसके मुख पर लगा। इसलिए सात-आठ लोगों ने मिलकर हमें पीटा।"[7] रोजी-रोटी के लिए उन्हें भीख माँगनी पड़ती है और भीख माँगने के लिए जाने के बाद कुत्ता उन्हें काटता है और उसे पत्थर मारने पर उसके मुख पर लगने के कारण लोग उन्हें ही पीटते है इस जाति के कारण उन्हें किन-किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है इसका चित्रण होता है। रोजी- रोटी की तलाश में आर्थिक विवंचना से जूझते हुए वे अपनी बी. कॉम की पढ़ाई पूरी करते है उन्हें चाहे पाठशाला में हो या समाज में उन्हें जातिव्यवस्था के भी अनुभव आ गए।

दादासाहब मोरे का जीवन इन जातिव्यवस्था और वर्णव्यवस्था के कारण बहुत ही कठिन समस्याओं से गुजरते हुए व्यथित हुआ है ऐसा कहा जाता है भारत देश स्वातंत्र्य हुआ है लेकिन आज भी देश में कई ऐसे समाज हैं जिनके पास सुविधाएँ पहुँची ही नहीं। कई ऐसे लोग हैं जो एक वक्त की रोटी खाकर ही जीते है। ऐसी अवस्था हमें दिखाई देती है।

निष्कर्ष :-

मराठी से हिंदी में अनूदित दादासाहब मोरे की 'डेराडंगर' आत्मकथा का अध्ययन करने के उपरांत निष्कर्षत: स्पष्ट होता है कि रोजी-रोटी से परेशान लोग एक जगह स्थित नहीं है। देश स्वातंत्र्य हुआ है लेकिन यह समाज आज भी समस्याओं से जूझता हुआ दिखाई देता है। इस समाज की पारिवारिक आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थिति पर भी प्रस्तुत आत्मकथा में चित्रण है। यह लोग विमुक्त घुमंतू है अपने पेट भरने के लिए एक जगह से दूसरे जगह स्थलांतरण करते है। जातिवादी मानसिकता के कारण इन लोगों को कोई काम पर भी नहीं रखता है। परिणामतः उनके घर में अधिक विवंचना का एहसास होता है।

संदर्भ ग्रंथसूची : -

1. रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 2017 पृ. क्र. 86
2. डॉ. हरिशचंद्र उप्रेती, भारतीय जनजातियाँ संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर पृ. क्र.1
3. दादासाहब मोरे, डेराडंगर, अनुवाद - डॉ. अर्जुन चव्हान, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहली आवृत्ती 2022 पृ. क्र. 66
4. वही पृ. क्र. 17
5. वही पृ. क्र.66
6. वही पृ. क. 124
7. वही पृ. क. 127,128